P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika
E: ISSN NO.: 2349-980X Vol-III* Issue-I*September-2015

मध्यकालीन निर्गुण मार्गी संतो का व्यक्तित्व एवं कृतित्व (संत रविदास के संदर्भ में)

ममता सहगल
सहायक प्राध्यापिका,
हिन्दी विभाग,
श्री गुरूनानक महिला महाविद्यालय,
जबलपुर

सारांश

रविदास संत काव्यधारा के प्रमुख कवि हैं। इनका ज्ञान साधना व अनुभव पर आधारित है। इनके मतानुसार ईश्वर ही परम तत्व है तथा जड़ व चेतन सर्वस्व में व्याप्त है भक्ति के लिये इन्हाने वैराग्य को अनिवार्य माना है। निर्गुण मार्गीय काव्यधारा के कवि कबीरदास जी ने संतन में रविदास संत कहकर इनका महत्व स्वीकार किया है। इनकी रचनायें गुरू ग्रंथ साहिब में संकलित हैं। इनके पदों में अरबी, फारसी, गुजराती, पंजाबी, ब्रज आदि भाषाओं के शब्द बहुतायत में हैं।

मुख्य शब्द : भक्तिकालीन संत, सच्ची आध्यात्मिकता।

प्रस्तावना

मध्यकालीन संत परम्परा में अनगिनत संतों का प्रादुर्भाव हुआ। इस काल को हिन्दी साहित्य के इतिहास का स्वर्णयुग अथवा स्वर्ण काल भी कहा जाता है। भक्तिकाल की प्रारंभिक व्यवस्था को अत्याधिक प्रभावित करने वाले संतों में कबीरदास, संत नामदेव, संत तुकाराम, गुरूनानक साहिब, पलटू साहिब, दादू, मीराबाई आदि शामिल है। इन सभी संतों ने मानव समाज का पथ प्रदर्शन किया और उन्हे आपसी भाईचारा, सौहार्द एवं प्रेम से रहने के लिए प्रेरित किया है। संत किसी भी जाति, कुल, धर्म, देश, राष्ट्र या समय में क्यों न आए हो उन सभी का आध्यात्मिक उपदेश एक समान होता है। चाहे वह निर्गुण मार्गी संत कबीर हों, नानक हों या रविदास जी हो। इन्होने समाज में व्याप्त धार्मिक अंधविश्वासों एवं पराम्परागत रूढ़ियों पर प्रहार करते हुए प्रचलित धार्मिक पाखण्ड एवं कुरीतियों को दूर करने का सफल प्रयास किया।

यदि हम संत कवियों पर दृष्टि डाले तो हम देखते हैं कि प्रायः संत कवि ऐसे हैं जो निम्न जातियों में उत्पन्न हुए। उदाहरण स्वरूप कबीर जुलाहे थे, रैदास चमार थे, नामदेव छीपी थे, दीन दयाल मोची थे। इन कवियों ने अपने–अपने समय में जाति प्रथा को लेकर काफी अपमान सहन किया।

संभवतः उस समय घोर कर्मकांडी और जातिवादी समाज को दृढ़ स्थापित परम्परा से निकालने और सच्ची आध्यात्मिकता का मार्ग दिखलाने के लिए संतों की वाणी की आवश्यकता थी। अन्य संतों की तरह ही रविदास जी ने अपनी वाणी के माध्यम द्वारा आध्यात्मिकता की उच्चतम चोटी पर पहुँचाने का आदर्श स्थापित किया तथा निर्भिकतापूर्वक सभी जाति और सम्प्रदाय के बीच अपने प्रेम और भक्ति के उपदेश को फैलाया। रविदास जी कहते हैं–

''मेरी जाति कुट बॉढला ढोर ढोवंता
नितहि बानारसी आस पासा।।
अब बिप्र परधान तिहि करहिं डंडउति
तेरे नाम सरणाई रविदासु दासा।।

आदिग्रंथ पृ. 1293 वाणी 51

इसी प्रकार कबीरदास जी ने भी प्रचलित वर्ण व्यवस्था जिसके अनुसार ब्राम्हण तथा शूद्र में अन्दर था, का खुलकर विरोध किया। ब्राम्हणों पर व्यंग्य करते हुए कहते है–

तू ब्राम्हण हौं काशी का जुलाहा, चीन्ह न मारे गियाना
जो तू बांमन बामनी जाया, और राह हौ क्यों न आयो
जो तूं तुरक तुरकनी जाया तो भीतरि खतना क्यों न कराया।

नानक जी ने भी समाज में वर्ण भेद को नष्ट कर नीच जाति को ऊँचा बनाकर सभी मनुष्यों में समानता लाने का भरसक प्रयास किया तो वे कहते हैं कि–

नीचा अंदरि नीच जाति,
नीची हू अति नीचू।
नानक तिन के संगि साथि,
वाडिआ सिडु किया रीस।।
जिथै नीच समालीअनि,
तिथै नदरि तेरी वखसीस।।

(वार सिरी राग, सलोक महला 1 पृ. 15)

समय–समय पर रविदास जी ने अपनी वाणी के माध्यम से विषम एवं विपरीत परिस्थितियों में भी लोगों का मार्गदर्शन किया। रविदास ने बाह्य आडम्बरों का खुलकर विरोध किया। उन्होने परमात्मा प्राप्ति के अनेक मार्ग बतलाए हैं। वे कहते हैं परमात्मा हमारे अन्दर है उसे बाहर ढूँढ़ने का सारा प्रयास व्यर्थ है। हम उसे केवल सुमिरन द्वारा मन को एकाग्र कर प्राप्त कर सकते हैं। उनके अनुसार बाहरमुखी साधन, कर्मकाण्ड तथा अनेक प्रकार की बाहरी धार्मिक वेश–भूषा निरर्थक है। रविदास जी ने स्वष्ट शब्दों में उद्घोषित किया है कि–

काबै अरू कैलास मंह, जिह कूं ढूढण जांह।
'रविदास' पिआरा राम तउ, बइठहिं मन मॉह।।

(दर्शन 6)

इसी तरह–

गिरि वन काहे खोजन जाई,
घट अभिअन्तर खोजहु भाई।
पहुप मधे ज्यूं वास बसत है,
व्यूं सब घट रमहि रघुराई।
बाहर खोजत जनम सिरानों,
मिग्र त्रिस्ना रहौ उरसाई
राम चरन मंह थिर मन राखहुं,
रिदै कंवल बसै रघुराई।।

(वाणी 167)

आडम्बरचारियों के विषय में वे कहते हैं कि जो लोग रचते हैं, वो स्वयं सत्य ज्ञान से मीलों दूर हैं। माथे पर तिलक, कानों में मोटे–मोटे कुंडल धारण करके मन को स्वतंत्र रखकर तथा सिर पर जटा लगाने, शरीर को कष्ट देने से कोई योगी नहीं बन जाता है। योगी तो वही है जिसने मन तथा तन दोनों को अपने वश में कर लिया है।

रविदास जी कहते हैं–

पांडे! हरि विच अंतर डाढ़ा,
मूंड मुड़ावै सेवा पूजा, भ्रम का बंधन गाढ़ा।
माला तिलक मनोहर बानौ,
लागौ जम की पासी।
जौ हरि सेती जोडया चाहौ,
तौ जग सों रहौ उदासी।

(वाणी 161)

इसी प्रकार कबीर दास जी ने भी धूर्त तथा कपटी साधु के विषय में कहा है–

''मन मैला तन उजरा, बगुला कपटी अंग।
ता सौं तो कौवा भला, तन–मन एकहिं अंग।

मध्यकालीन संतों की वाणी में कर्म की प्रधानता रही है। कर्म अर्थात् जीव द्वारा किये गए किसी भी प्रकार का कार्य। कबीर दास जी कहते हैं कि जिस प्रकार भुना हुआ चना फिर नहीं उग सकता है उसी प्रकार लक्ष्यहीन कर्म से फल की प्राप्ति नहीं होती। अर्थात् हमें इस प्रकार के कर्म करना चाहिये जिससे हम अपने जन्म को सुधार सकें। कर्मों को सुधारने का उपदेश देते हुए कबीर कहते हैं–

काया खेत किसान मन, पाप पुन्य दो बीव।
बोया लूनै अपना, काया कसकै जीव।।

इसी प्रकार नानक जी ने भी मनुष्य के व्यक्तिपरक कर्म पर विशेष बल दिया है। गुरूनानक ने भले–बुरे (शुभ–अशुभ) दो रूपों में कर्मों को माना है। उनका कहना है कि ''कर्म कागज है, मन दवात है, जिस पर संयोग से शुभ तथा अशुभ दो प्रकार की लिखावटें की गयी हैं। बुरे कर्मों से भट्टी में जलता हुआ मन रूप लोहा, चिंता रूप संडसी से निरंतर पकड़ा जाता है।''

यथा–

''करणी कागदु मनु मसवाणी,
बुरा भला दुई लेख पाए।
कोरले पाप पड़े तिसु ऊपरि,
मनु जलिआ संनही चित भई।

(महला 1, माक, पृ. 990)

कबीरदास जी के समकालीन कवि रविदास जी के अनुसार हम जैसा करते हैं, वैसा ही फल पाते हैं– यह कर्म का अटल नियम हैं। इस नियमानुसार ही हमें बार–बार अनेक प्रकार की योनियों में जन्म लेना पड़ता है। वे कहते हैं कि जब कर्मों का हिसाब होता है, तब जो–जो कर्म किये गये होते हैं वही दिखाई देते हैं–

का तूं सौवे जागि दिवाना,
झूठा जीवन सॉचि कर जाना
जो दिन आवै सो दुःख मैं जाही,
कीजै कूंच रह्यं सचु नाहीं।
संगी चल्यों है हम चलना,
दूरि गवन सिर ऊपरि मरना।।
जो कुछ बोवा लुनियै सोई,
ता मैं फेर फार नहिं होई।
छाड़िअ कूर भजौ हरि चरना,
ताका मिटै जनम अरू मरना।।
जिनि जीव दिया सो रिजक उमरावै,
घट–घट भीतरि रहट चलावै।
करि बंदिगी छांड़ि मैं मेरा,
हिरदै करीम संभारि सवेरा।।
आगै पंथ खरा है झीना,
खांडै धार जिसा है पैना।
तिस उपरि मारग है तेरा,
पंथी पंथ संवारि सबेरा।।
क्या ते खरच्चा क्या ह्वौं खाया,
चलि दरि–हाल दिवनिं बुलाया।
साहिब ता पै लेखा लेसी,
भीरि परयां भरि–भरि देसी।।
जनम सिराना किया पसारा,
साँझ परी चहूंदिसि अंधियारा।
कहै 'रविदास' नादानि दिवाना,
अजहूँ न चेतै दुनी फंद खाना।।

अर्थात रविदास कहते हैं कि तू क्यों सोया पड़ा है? उठ जा। क्या इस झूठे संसार को तूने सत्य मान

लिया है? जो दिन आते हैं वे दुःख में ही बीत जाते हैं। इस मृत्युलोक से हमारे संग–साथी चले जा रहे हैं और हम भी चले जायेंगे। हम कर्मों को छोड़कर ईश्वर के चरणों में मन लगा। वही तेरे लिए मुक्ति का द्वार है जो लोग परमात्मा को छोड़कर अन्य कहीं भटकते रहत हैं उनका जीवन चक्र कभी समाप्त नहीं होता है। जिस परमात्मा ने तुझे जीवन दिया वही तेरी जीविका का भी प्रबंध करेगा। जैसे किसान रहट द्वारा कुएँ से पानी निकालकर पौधों को सींचता है, वैसे ही परमात्मा भी प्रत्येक जीव के अंदर बैठा माना उसके भरण पोषण के लिए रहट चला रहा है। तू मोह–माया, अहंकार का त्याग कर और उस प्रभु को मन में बसा। रविदास जी कहते हैं कि रे नासमझ, अरे पगले, तू अब भी होश नहीं करता कि यह दुनिया तुझे फॅसाये रखने वाली एक माया जाल की कोठरी है?

निर्गुण संत परम्परा में ईश्वर के नाम का स्मरण अत्यंत महत्वपूर्ण माना है। सुमिरन अर्थात् ईश्वर के नाम, रूप, लीला धाम, चरित्र आदि का स्मरण करते रहना। सुमिरन भक्ति की शाँत सहज एवं रहस्यपूर्ण अद्रभुत प्रक्रिया है। ईश्वर प्राप्ति व सबसे सरल मार्ग सुमिरन है। रविदास जी के अनुसार नाम ही वह परम सत्य है जो आदि से अंत तक हमशा विद्यमान रहता है–

'रविदास' सत्त इक नाम है,
आदि अंत सचु नाम।
हनन करेई सभ पाप ताप,
सत्त सुखन करि खान।

जब तक शरीर में प्राण है तब तक हमें सच्चे नाम का जाप या सुमिरन करते रहना चाहिए। रविदास जी कहते हैं जिसके अंदर परमात्मा के नाम का निवास हो जाता है, वह परम पद को प्राप्त कर लेता है।

सत्त ईश कहुं रूप है,
सत्त भक्ति अत अपार।
'रविदास' सत्त कूं धारणा,
देहतिं पाप निबार।।

संत रविदास जी ने गुरू की महिमा का गीत गाया है। उन्होने गुरू को नारायण, उपदेशक, मार्गप्रदर्शक आदि नामों से सम्बोधित किया है। गुरू की महत्वता पर प्रकाश डालते हुए वे कहते हैं कि परमात्मा, सतगुरू और साधु–सन्तों का ह्रदय एक समान होता है। यहीं शास्त्रों का सदा मूल तत्व रहा है। इनके बीच कोई फर्क नहीं समझना चाहिए। इस सत्य का अनुसरण करने में यदि आरे से चीरे जाने की यातना भी सहनी पड़े तो उसे सहष स्वीकार कर लेना चाहिए–

हरि गुर साध समान चित,
नित आगम तत भूल।
इन बिच अंतर जिन परौ,
करवत सहन कबूल।।

निष्कर्ष

हम कह सकते हैं कि निर्गुणमार्गी संतों ने अपनी वाणी के माध्यम से मनुष्य को आदर्श जीवन पद्धति सिखाना चाहते थे। हमारे समाज के इन संतों ने जातिवाद को समाप्त करने का पूर्ण प्रयत्न किया। संतों ने सामाजिक दृष्टि से भी सभी जातियों में परस्पर कलह और कटुता द्वेष और अविश्वास को मिटाने के लिए अपने उपदेशों द्वारा पथ हीन जनता का मार्गदर्शन किया।

वर्तमान युग में इन धर्म–गुरूओं की वाणी की प्रासंगिकता चरितार्थ होती है। इन सभी संतों ने भारतीय दर्शन के अद्वैतवादी सिद्धांत से प्रेरणा लेकर ईश्वर के निर्गुण रूप की परिकल्पना की और ईस्लाम धर्मावलम्बियों के साथ प्रेम से रहने का परामर्श दिया। इन्होने दलित वर्ग के उत्थान के लिए अथक प्रयत्न किया और सभी जातियों को भेदभाव रहित होकर प्रेम से रहने के लिये प्रेरित किया। वर्तमान युग में इन सभी संतों के उपदेशों की प्रासंगिकता स्वयं सिद्ध है। भारतीय संविधान में जिस सर्वधर्म समभाव की परिकल्पना की गई है उसके मूल स्रोत ये ही संत कवि हैं। उक्त संतों की विचारधारा को गहराई स समझने की आज भी आवश्यकता है। जिससे साहित्य और समाज को नई दिशा मिलेगी और मानव समाज शांति की ओर उन्मुख होगा।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. गुरूनानक जीवन युग तथा शिक्षाएँ, गुरमुख निहाल सिंह, गुरूनानक फाउण्डेशन दिल्ली।
2. गुरूनानक का रूहानी उद्देश्य, जे.आर. पुरी, राधास्वामी सत्संग व्यास, अमृतसर।
3. गुरूनानक और उनका काव्य, डॉ. महीपसिंह, डॉ. नरेन्द्र मोहन नेशनल पब्लिसिंग हाउस 23, दरियागंज दिल्ली, प्रथम संस्करण– 1971
4. आसा, दी वार सटीक, टीकाकार प्रो. साहिब सिंघ, ब्रदर्ज बाजार माई सेवा अमृतसर।
5. जीवन यात्रा तथा सिद्धांत गुरूनानक दव जी, कृपाल सिंघ, चंदन अनुवादक स. कुलबीर सिंघ, मिशनरी कॉलेज, लुधियाना–8
6. कबीरदास, डॉ. कान्ति कुमार जैन, दिव्य प्रकाशन, ग्वालियर।
7. संत कबीर,, डॉ. रामकुमार वर्मा, साहित्य भवन लिमिटेड, इलाहाबाद।
8. कबीर ग्रंथावली, डॉ. श्याम सुन्दरदास, नागरिक प्रचारिणी सभा, वाराणसी।
9. कबीर, आचार्य प्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
10. भक्त कबीर जी, भाई चतर सिंघ, जीवन सिंघ, अमृतसर।
11. परम पारस गुरू रविदास, उपाध्याय के.एन. जगदीश चंद्र सेठी सेक्रेटरी राधास्वामी सत्संग व्यास, पंजाब।